R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-22, अङ्क-9 सितम्बर 2022 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

रत्नत्रय धर्म

दशलक्षण महापर्व

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन

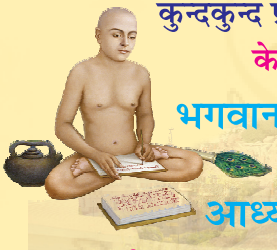

के संयुक्त तत्त्वावधान में

भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

(रविवार, 23 अक्टूबर से गुरुवार, 27 अक्टूबर 2022)

सत्धर्म प्रेमी बन्धुवर !

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी तीर्थधाम मङ्गलायतन के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में, भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर **रविवार, 23 अक्टूबर से गुरुवार, 27 अक्टूबर 2022** तक शिविर का आयोजन किया जा रहा है—आप इन तिथियों को सुरक्षित कर लें।

इस अवसर पर —

— पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी का लाभ
— देश के विशिष्ट विद्वानों के स्वाध्याय का लाभ
— पूजन-विधान का लाभ
— दीपावली पर्व पर निर्वाण प्रतीक का दृश्य एवं निर्वाण प्रतीक अर्पित करने का लाभ
— विज्ञान वाटिका पुरस्कार वितरण
— तीर्थधाम मङ्गलायतन के दर्शन का लाभ
— सांस्कृतिक कार्यक्रमों का लाभ प्राप्त होगा

विद्वत् समागम—दादाश्री विमलचंद झांझरी, उज्जैन; पण्डित जे.पी. दोशी, मुम्बई; पण्डित प्रदीप झांझरी, सूरत; डॉ. संजीव गोधा, जयपुर; डॉ.योगेश जैन, अलीगंज; ब्रह्मचारी सुकमाल झांझरी, उज्जैन; पण्डित विराग शास्त्री, जबलपुर; पण्डित ऋषभ शास्त्री, दिल्ली; पण्डित अरहन्त झांझरी, उज्जैन; पण्डित नगेश जैन, पिड़ावा; बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन; ब्रह्मचारिणी ज्ञानलताबेन झांझरी, पुष्पलताबेन झांझरी, समताबेन झांझरी, उज्जैन; पण्डित अमित अरहन्त शास्त्री; पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, पण्डित समकित शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन

सभी तत्त्वप्रेमी महानुभावों से निवेदन है धर्म लाभ लेने हेतु अपने आने की सूचना पत्र, फोन एवं Email द्वारा शीघ्र प्रदान करने का कष्ट करें।

पत्र व्यवहार का पता— तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-22, अङ्क-9 (वी.नि.सं. 2548; वि.सं. 2079) सितम्बर 2022

अगर जगत में सुख होता तो....

अगर जगत में सुख होता तो,
तीर्थंकर क्यों इसको तजते।
पुण्यों का आनन्द छोड़ कर,
निज स्वभाव चेतन क्यों भजते॥

अथिर जगत की माया ममता,
पर परणति भव दुखमय जानी।
आत्म ध्यान तल्लीन हो गए,
और हो गए केवलज्ञानी॥

आश्रव को भव रूप जानकर,
बंध त्याग संवर को धारा।
भाव निर्जरा तप के द्वारा,
चार घातिया कष्ट निवारा॥

यह संसार महा दुख सागर,
जन्म मरण की लहरें इसमें।
चारों गतियों का बन्धन है,
राग द्वेष की डगरें इसमें॥

इस प्रकार यह रागद्वेष ही,
जीवमात्र की है, बीमारी।
चेतन रूप—अनन्त गुणमयी,
सिद्ध स्वरूप सदा सुखकारी॥

शुभ और अशुभ बंध दोनों हैं,
पुण्य पाप की ही परिभाषा।
चिदानन्द चैतन्यमयी है,
शुद्ध ज्ञान चेतन की भाषा॥

— श्री राजमल पवैया, भोपाल

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
वरजू बहिन
सुपुत्र **श्री जवरचंदजी**
दुलीचंदजी हथाया
(थाणावाले) मुम्बई-7

क्या - कहाँ

आत्मशुद्धि का साधक 5
विशुद्ध ज्ञान में विकार 8
साम्यभाव 13
श्री समयसार नाटक 16
श्रुत परम्परा एवं 21
कविवर भगवतीदास 23
प्रेरक-प्रसंग 26
जिस प्रकार-उसी प्रकार 28
समाचार-दर्शन 29

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

आत्मशुद्धि का साधक पर्वराज पर्यूषण

श्री पण्डित गेंदालाल शास्त्री, बूंदी

पर्यूषण पावन परव, निज स्वरूप की याद।
हमें कराने आ रहा, छोड़ो सकल प्रमाद॥1॥

सब तरफ से अपनी वृत्तियों को हटाकर आत्मस्वभाव में रहना अर्थात् इन्द्रियों से और कषाय जनित विकृत-परिणतियों से बचकर अपने वीतराग विज्ञानमय आत्मस्वभाव के सन्मुख होना ही इस पर्यूषण पर्वराज का मुख्य लक्ष्य है। जैनधर्म में अनेक पर्व हैं लेकिन आत्मोन्मुख होने का सर्वोत्कृष्ट साधन यही पर्व माना जाता है। वास्तव में तो पर्यूषण के दिवस ही धर्म साधन के हों, शेष समय आत्मा धर्म साधन का अनधिकारी हो यह बात सर्वथा अनुचित है। क्योंकि धर्म भाव, वस्तु का स्वभाव है, सो वह तो जीव अजीव सभी वस्तुओं में पाया जाता है, यहाँ प्रकृत में धर्म का तात्पर्य जीव की स्वलक्ष्यी निर्मल पर्याय से है। कहा भी है 'धम्मो मंगल मुक्किट्ठं' अर्थात् धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है। दशवैकालिक। और भी लिखा है—

जरा मरण वेगेण बुज्झ माणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो परण य गई सरण मुत्तम॥

(उत्तराध्ययन, 23-68)

अर्थात् जरा मरण के वेग से बहनेवाले प्राणियों के लिए धर्म ही, एकमात्र द्वीप प्रतिष्ठा गति और उत्तम शरण है। जैसे रोग दूर करने के लिए औषधि ग्रहण करने में काल की मुख्यता नहीं है, वैसे धर्म साधन करने के लिए भी, काल मुख्य साधन नहीं है।

धर्म आत्मा की अविकारी परिणति

वह प्रत्येक समय पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त की जा सकती है; इससे सिद्ध हुआ कि जब भी यह आत्मा स्वलक्ष्य से शुद्धपर्याय प्रगट करता है, तभी इसके लिए वह समय पर्यूषण पर्व कहला सकता है। यद्यपि कार्य सदैव अपनी उपादान की मुख्यता से ही होता है, लेकिन कार्य निष्पत्ति के समय तदनुकूल

बाह्यनिमित्त भी अनिवार्य रूप से उपस्थित रहते ही हैं। वैसे धर्म रूपी कार्य के लिए आत्म शक्ति उपादान होते हुए भी बाह्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव भी अपनी योग्यता से तद्नुकूल स्वयं होते ही हैं। इसे ही बाह्य व्याप्ति से निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध कहते हैं। यह सम्बन्ध आकाश कुसुमवत् सर्वथा कल्पित नहीं है।

वैसे व्यापार आदि के अवकाश के कारण और बरसात के कारण आत्मार्थी धर्मीबन्धु भी बाह्य निमित्तरूप से इन पर्व दिनों को धर्म साधन के लिए उपयुक्त मानते हैं और इन्द्रिय विषयों से और कषायों से अपनी आत्मपरिणति को हटाकर शुद्ध परिणति को प्राप्त करने का यथाशक्य प्रयत्न करते हैं।

गृहस्थों का चित्त खाने कमाने की चिन्ताओं के कारण सदैव आत्मोन्मुख नहीं रह सकता है। अतः इन पर्यूषण के दिनों को आलम्बन बनाकर गृहस्थ चित्त की व्यग्रता को कम करने का प्रयत्न करते हैं। आत्मा को संसार बन्धनों से छुड़ाने के लिए धर्म अत्यन्त आवश्यक है, इसके बिना दुःखमय चारों गतियों के भ्रमण से पिण्ड नहीं छुड़ाया जा सकता। कहा भी है—

संसार दुःखतः सत्वान् यो धरत्त्युत्तमे सुखे।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार, स्वामी समन्तभद्र)

अर्थात् जीवों को संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम अतीन्द्रिय सुख में धारण करे वही धर्म है। अनादि काल से यह आत्मा अपने सच्चिदानन्द स्वभाव को भूलकर, इन्द्रिय विषयों और कषायों में ही तल्लीन हो रहा है, इसलिए इनसे निर्वृत्त होकर आत्मोन्मुख होना, इसे बड़ा कठिन मालूम होता है। पुनः पुनः आत्म स्वभाव से विमुख होकर जैसे मच्छर पुनः पुनः दीपक पर गिर कर प्राणों की आहुति दे देते हैं; वैसे यह जीव भी विषय कषायाग्नि में स्वाहा हो रहा है। इसी कारण गृह कार्यों से निवृत्ति पाकर आत्महित करने के लिए पर्यूषण के बहाने हमें उत्साहित किया है। वास्तव में अपने विचारों पर विजय पाकर आत्मविजयी बनना ही धर्म है। कहा भी है—

अप्पाणमेवजुज्झाहि किंते जुज्झेणवज्झाओ।
अप्पणाचेव अप्पाणं जहत्ता सुहमेहए॥

(उत्तराध्ययन, अध्याय 9, गाथा 35)

अर्थात् तुम आत्मा के साथ युद्ध करो बाह्य पदार्थों तथा दूसरे मनुष्यों से युद्ध करने से क्या फायदा है ? आत्मा द्वारा आत्मा को जीतना इसी से सुख प्राप्त होता है। और भी कहा है—

अप्पाचेवदमेयध्वो अप्पाहु खलुदुद्धमो।
अप्पादन्तोसुही होई अस्सिलोए परत्थ य॥

(उत्तराध्ययन, अध्याय 1, गाथा 15)

अर्थात्—आत्मा ही दमन करने योग्य है और आत्मा ही दुर्दम्य है, आत्मा का दमन करनेवाला ही इसलोक और परलोक में सुखी होता है। इन उपरोक्त कथनों से भी यही सिद्ध होता है कि दुनिया में सिंह, व्याघ्र, सर्पादि को और बड़े-बड़े दुश्मनों का दमन करनेवाले अनेक मिल जावेंगे, लेकिन 'आतम के अहित विषय कषाय।' इनको दमन करनेवाले धर्मी तो इने-गिने ही मिलेंगे। इस **पर्यूषण पर्वराज का लक्ष्य भी इन आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का ही है। वास्तव में इन पर विजय पाना ही सच्चा धर्म है। पर्यूषण पर्व का सार तो अपने आत्मा को इस प्रकार बनाने में है—**

निर्मम निरहंकारो निस्संगो चत्तगाखो।
समोयसव्वभूयेसु तसेसु यावरेसु अ॥

(उत्तराध्ययन, अध्याय 19, 89)

अर्थात्—बड़ा वही है जो अहंकार और ममकार रहित हो गौरव (बड़ाई) को छोड़ देता हो और त्रस, स्थावर जीवों पर समभाव रखता हो। वास्तव में तो धर्मी का पर्यूषण पर्व पर उक्त गुणों को प्राप्त करने का लक्ष्य होता है। हम लोग बात-बात में अकड़ बताते हैं। सहधर्मी बन्धुओं के प्रति दुर्व्यवहार करते हैं, और त्रस, स्थावर जीव तो दूर रहे, बराबर के धर्मात्माओं से भी नाक ऊँची रखना चाहते हैं। ऐसे लोगों का पर्व मनाना, न मनाना बराबर है।

— सन्मति सन्देश

विशुद्ध ज्ञान में विकार का अकर्तृत्व

भाई, तू ज्ञानस्वभाव को एकबार दृष्टि में तो ले! ज्ञानस्वभाव में दृष्टि करते ही विकार की रुचि छूट जायेगी। विकार का अकर्तृत्व होकर तेरे पुरुषार्थ की गति ज्ञायकभाव की ओर ढलेगी—इसमें सम्यग्दर्शन है, इसमें सम्यग्ज्ञान है और इसी में आनन्द का अनुभव है... ज्ञायक के ओर की परिणति में मोक्षमार्ग का समावेश हो जाता है।

——— [समयसार-सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के प्रवचनों से] ———

* भगवान आत्मा अपने ज्ञायकस्वभाव द्वारा पर का अकर्ता ही है। जो जीव ज्ञायकस्वभाव में सावधान हुआ, उसकी परिणति अन्तरोन्मुख हुई; उस परिणति में विकार का भी अकर्तापना हुआ।

* यह प्रभु आत्मा, जगत के अनन्त पदार्थों से पृथक् है, स्वयं आनन्दरस के स्वाद से भरपूर है। वह जब अपने ज्ञायकस्वभाव को भूलकर पर की कर्तृत्वबुद्धि करता है, तब दुःख का अनुभव करता है। भाई, जगत के अनन्त-पदार्थ सब अपने-अपने कार्यरूप परिणमित हो ही रहे हैं, क्या वे परिणमन से रहित हैं, जो तू उनके कार्य करेगा? वे तो अपना कार्य कर ही रहे हैं, फिर उसमें तूने क्या किया? तू अपने ज्ञानरूप परिणमन कर, वह तेरा कार्य है। तेरे ज्ञान में पर का कर्तृत्व नहीं है।

* तू ज्ञानस्वभाव को एकबार दृष्टि में तो ले! ज्ञानस्वभाव में दृष्टि करते ही विकार की रुचि छूट जायेगी... विकार का अकर्तृत्व होकर तेरे पुरुषार्थ की गति ज्ञायक की ओर ढलेगी।—इसमें सम्यग्दर्शन है, इसमें सम्यग्ज्ञान है, और इसी में आनन्द का अनुभव है। ज्ञायक के ओर की परिणति में मोक्षमार्ग का समावेश हो जाता है।

* ज्ञानी अपने ज्ञानादि निर्मलभावों को तो स्वज्ञेयरूप से तन्मय होकर जानता है, और ज्ञान से भिन्न ऐसे परभावों को तथा परद्रव्यों को परज्ञेयरूप से उनमें तन्मय हुए बिना जानता है। ऐसी भेदज्ञान परिणति में कर्म का अकर्तापना ही है। उस ज्ञान में कर्म बन्धन नहीं होता।

* जगत में कोई पदार्थ परिणमन रहित नहीं होता। परिणमनरूप निजकार्य में प्रत्येक पदार्थ तन्मयरूप से वर्त रहा है। जीव के परिणाम में तन्मयरूप से जीव वर्तता है और अजीव के परिणाम में अजीव तन्मयरूप से वर्तता है। कोई पदार्थ दूसरे के परिणाम के साथ कभी तन्मय नहीं होता—अलग ही रहता है। अपने ज्ञान परिणाम में ही मैं तन्मयरूप से उत्पन्न होता हूँ—ऐसा निर्णय करता हुआ ज्ञानी, पर का अकर्ता ही रहता है। इसका नाम मोक्ष का पुरुषार्थ है।

* भाई, पहले तू एक बात का निर्णय कर कि मेरा आत्मा ज्ञानस्वभावी है। अब ज्ञानस्वभाव परिणमित होकर ज्ञानभावरूप से उत्पन्न होगा या अजीवरूप से? ज्ञानस्वभाव कभी अजीवरूप से उत्पन्न नहीं होता अर्थात् ज्ञान का कार्य अजीव नहीं होता; ज्ञान का कार्य ज्ञानमय ही होता है—इस प्रकार ज्ञानभाव में ज्ञान का ही कर्तृत्व है, उसमें अन्य का अकर्तृत्व ही है। ऐसा ज्ञानभावरूप से ही परिणमित ज्ञान, बन्ध का कारण नहीं है, वह ज्ञान अबन्ध है तथा वह 'सर्व विशुद्ध' है। ऐसा 'सर्वविशुद्धज्ञान' अपने निर्मल परिणाम का ही कर्ता है, वह किसी पदार्थ को बदलने नहीं जाता। ज्ञान में सर्व को जानने की शक्ति है, परन्तु किसी को आगे-पीछे करने की शक्ति नहीं है। ज्ञान के ऐसे स्वभाव का निर्णय, वह वीतरागभाव का कारण है।

* भाई, तुझे अपने ज्ञान का विश्वास भी न आये तो तू अन्तर्मुख कब होगा? ज्ञान से जो पर का काम कराना चाहे या ज्ञान से विकार कराना चाहे, वह जीव पर से और विकार से भिन्न ज्ञानस्वभावरूप कब परिणमित होगा? और उसे वीतरागता कब होगी? ज्ञान की जिसे प्रतीति नहीं है—अनुभव नहीं है, उसे वीतरागभावरूप धर्म का अंश भी नहीं होता। ज्ञान का ज्ञानरूप (राग से भिन्न) परिणमन होना वह धर्म है।

* धर्म कहो या ज्ञानचेतना कहो; आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान अन्तर्मुख होकर ज्ञानरूप ही परिणमित हो और राग-द्वेष या हर्ष-शोकरूप परिणमित न हो—वह ज्ञानचेतना है; उसमें ज्ञान का ही

कर्तृत्व है और वीतरागी आनन्द का भोक्तृत्व है।—ऐसा शुद्धज्ञान, वह मोक्ष का कारण है।

* आत्मा में जहाँ शुद्ध ज्ञानपरिणमन हुआ, वहाँ उसके परिणमन में विकार के साथ अकार्य-कारणपना हुआ; इसलिए शुद्धज्ञानपर्याय को विकार का कार्यपना भी नहीं है और विकार का कारणपना भी नहीं है। ज्ञान कारण होकर विकार का कार्य करे—ऐसा नहीं है, तथा विकार को कारण बनाकर ज्ञान उसका कार्य हो—ऐसा भी नहीं है। इस प्रकार ज्ञानभाव को विकार से अत्यन्त भिन्नता है। ज्ञान में विकार का कर्तृत्व किंचित्मात्र भासित नहीं होता। अहा, ऐसा भेदज्ञान, वह जैनदर्शन का मूल है। एकबार ऐसा भेदज्ञान करे तो विकार से पृथक् होकर ज्ञान अपने निजानन्द का संवेदन करता-करता मोक्षदशा को प्राप्त करता है।

* चेतना परिणति तीन प्रकार की है—एक ज्ञानचेतना, दूसरी कर्मचेतना और तीसरी कर्मफलचेतना। व्यवहार के विकल्पों में वर्तती चेतना भी कर्मचेतना है और कर्मचेतना, वह बन्ध का कारण है। ज्ञान अन्तर्मुख होकर स्वयं अपने स्वभाव का संचेतन—अनुभव करता है।—ऐसी ज्ञानचेतना है। ऐसी ज्ञानचेतना का एक कण जागृत हुआ, वह केवलज्ञान प्राप्त कराता है।

* ज्ञानी के कर्ताकर्मपने का अपने ज्ञान में ही समावेश होता है, उसमें दूसरे की अपेक्षा नहीं है। ज्ञानी को जिस प्रकार अपने कर्ताकर्म में पर की अपेक्षा नहीं है, उसी प्रकार विकार की भी अपेक्षा नहीं है। अज्ञानी विकार के कर्ताकर्म में अटका है, वह ज्ञान का सच्चा कार्य नहीं है। भाई, तेरे ज्ञान का कर्तृत्व ऐसा नहीं है कि वह किसी अन्य का कार्य करने की अपेक्षा रखे। ज्ञान का कर्तृत्व ऐसा निरपेक्ष है कि उसका अपने में ही समावेश होता है; उसी प्रकार भोक्तापने का समावेश भी अपने में ही होता है। अहा, ऐसा निरपेक्ष स्वतत्त्व लक्ष में ले तो कितनी स्वाधीनता! कितनी निराकुलता! कितनी शांति! और कितनी वीतरागता!! निरपेक्ष स्वतत्त्व को जीव ने कभी लक्ष में नहीं लिया है

और बाहर की ही अपेक्षा रखकर पराश्रय में भटक रहा है। एक बार निरपेक्ष स्वतत्त्व को लक्ष्य में ले तो अपूर्व श्रद्धा-ज्ञान-आनन्द प्रगट हो।

* जगत के पदार्थ अपने-अपने कर्ता हैं; पर की अवस्था का कर्ता पर और अपनी अवस्था का कर्ता मैं। पर की अवस्था मेरा कार्य नहीं है और मेरी अवस्था पर का कार्य नहीं है; पर के साथ मुझे कर्ता-कर्मपने का सम्बन्ध किंचित् नहीं है, मैं तो ज्ञान हूँ और ज्ञान ही मेरा कार्य है। ऐसे निर्णय में स्वसन्मुख परिणति हो, उसका नाम धर्म है। उस स्वसन्मुख परिणति में अनन्त गुणों के निर्मल कार्य होते हैं, उन्हीं का धर्म कहा है।

* अहा, सत् तत्त्व के निर्णय में कितनी शक्ति है—उसकी सामान्य लोगों को खबर नहीं है। एक सत् तत्त्व के निर्णय में नवों तत्त्वों का निर्णय समाया हुआ है; अरिहन्तों और सिद्धों के स्वरूप का निर्णय भी स्वतत्त्व के निर्णय में समा जाता है। स्वतत्त्व को अर्थात् ज्ञायकतत्त्व को भूलकर एक भी तत्त्व का निर्णय नहीं हो सकता।

* जो परिणति स्वतत्त्व का निर्णय करके अन्तरोन्मुख हुई, उस परिणति में अपने आनन्दादि का वेदन है, परन्तु विकार का वेदन उस परिणति में नहीं है। जहाँ विकार के भी वेदन का कर्तृत्व नहीं है, वहाँ पर का कर्तृत्व तो कहाँ रहा? शुद्ध-उपादान अपने शुद्ध कार्य को ही करता है। अहा! निजरस से शुद्ध परिणमित ज्ञान, रागादि का अकर्ता है और कर्मबन्ध का भी निमित्तकर्ता वह नहीं है। ऐसा विशुद्धज्ञान मोक्ष को साधता है।

* चैतन्य में से चैतन्य ही स्फुरित होता है; चैतन्य में से विकार स्फुरित नहीं होता। जिस प्रकार सूर्य में से प्रकाश ही निकलता है; सूर्य में से अन्धकार नहीं निकलता, उसी प्रकार चैतन्य सूर्य में से ज्ञानप्रकाश ही निकलता है, चैतन्य सूर्य में से विकाररूप अन्धकार नहीं निकलता। परन्तु ऐसे चैतन्य का स्फुरण कब होता है? कि जब अन्तर में डुबकी लगाकर चैतन्यस्वभावी आत्मा का निर्णय करे, तब उसमें से चैतन्य किरण प्रस्फुटित होती है और उस चैतन्य किरण में (सम्यक्श्रुत में) समस्त तत्त्व का निर्णय करने की शक्ति है; समस्त आगमों का रहस्य उस ज्ञान में आ जाता है।

* एक ओर अनन्त गुण से परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव है; उसकी तो अचिन्त्य महत्ता भासित नहीं होती और कुछ शुभ विकल्प करे, कषाय की कुछ मन्दता करे, तो 'ओहो, बहुत कर लिया!'—ऐसी महत्ता भासित होने लगती है; उसे आचार्यदेव समझाते हैं कि अरे मूढ़! ऐसा अज्ञान तू कहाँ से लाया? चैतन्य की महत्ता के बदले विकार की महत्ता तुझे कहाँ से भासित हुई? सन्तों ने तो शास्त्रों में ज्ञान की महिमा भरी है, वह तुझे क्यों दिखायी नहीं देती? और विकार के कर्तृत्व में क्यों रुका है? वह कर्तृत्वबुद्धि छोड़ और ज्ञानमहिमा में उपयोग को लगा।

* सिद्धान्त तो सन्तों के अनुभव का संकेत है। पूरा अनुभव वाणी में कैसे आ सकता है? सिद्धान्त में तो मात्र उसका दिशा सूचन आया है; सन्तों ने सिद्धान्त में अनुभव का संकेत भरा है—कहीं अनुभवगम्य वस्तु वाणीगम्य नहीं हो सकती।

* ज्ञान आत्मा का निज लक्षण है; उस ज्ञान लक्षण में विकार का कर्तृत्व या भोक्तृत्व नहीं है, तथा उस ज्ञानलक्षण में जगत की कोई वस्तु अनुकूल या प्रतिकूल नहीं है। ज्ञानलक्षण स्वयं आनन्दसहित है, उसमें आनन्द का ही उपभोग है।

* ज्ञान को जिस प्रकार जगत की प्रतिकूलता का भय नहीं है, उसी प्रकार जगत की अनुकूलता की प्रीति भी नहीं है। जगत के पदार्थों के साथ जहाँ कर्ता या भोक्तापने का अभाव है, वहाँ उन्हें इष्ट-अनिष्ट मानना कहाँ रहा? और जहाँ इष्ट-अनिष्टपना नहीं है, वहाँ राग-द्वेष भी कहाँ रहे? इसलिए ज्ञानी को ज्ञान में से राग-द्वेष का कर्तृत्व भी निकल गया है।

* केवल-किरणों से शोभायमान इस भगवान चैतन्य सूर्य को प्रतीति में लेना वह अपूर्व उद्यम है... संपूर्ण परिणति कुलाँट खाकर अन्तरोन्मुख होती है। सातवें नरक से लेकर नववें ग्रैवेयक तक परिभ्रमण करने पर भी चैतन्य की प्रभुता लेशमात्र खण्डित नहीं हुई है; उसे प्रतीति में लेने से परिभ्रमण मिटता है।

-आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 22, अंक 5

पद्मनन्दिपंचविंशतिका, एकत्व अधिकार, गाथा 63 पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन

शुद्ध चैतन्य की उपासना का उपाय

साम्यभाव

श्री सर्वज्ञ भगवान ने सारे जगत में आत्मा की उपासना का क्या उपाय देखा है ? वह आचार्यदेव कहते हैं –

सर्वविद्धिसंसारैः सम्यग्ज्ञानविलोचनैः।
एतस्योपासनोपायः साम्यमेकमुदाहृतम्॥63॥

आत्मस्वभाव को पहिचान कर उसके ध्यान में एकाग्रता प्रगट हो, उसका नाम साम्य है। यह साम्य ही आत्मा की उपासना का उपाय है। सारे जगत में आत्मा की शांति का यही उपाय है, अन्य कोई उपाय नहीं है। – ऐसा किसने कहा? केवलज्ञानरूपी दिव्य नेत्रों द्वारा समस्त पदार्थों को जाननेवाले तथा संसार रहित ऐसे सर्वज्ञभगवान ने एक साम्यभाव को ही शुद्धात्मा की उपासना का उपाय कहा है। आत्मा का भान करके उसमें स्थिर होने से जिसके राग-द्वेष-अज्ञान बिलकुल नष्ट हो गये हैं – ऐसे सर्वज्ञ भगवन्तों ने ज्ञानचक्षु द्वारा चौदह ब्रह्माण्ड के भावों को प्रत्यक्ष देखा, उनमें आत्मा की शांति का यह एक ही उपाय देखा है कि साम्यभाव आत्मा की शांति है। प्रथम आत्मा की सम्यक्श्रद्धा करना भी साम्यभाव है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – यह तीनों साम्यभाव हैं और वही शुद्ध आत्मा की उपासना का उपाय है।

जो स्वयं असंसारी—मुक्त हुए हैं, उन्होंने ऐसा ही उपाय अपने केवलज्ञान में देखा है कि हे जीव ! तुझे यह समता ही शांति का उपाय है। किन्तु समताभाव किसे कहा जाये ? लोग सामान्य मंदकषाय को समता कहते हैं, किन्तु वह वास्तव में समता नहीं, किन्तु विषमता है। ज्ञानमूर्ति आत्मस्वभाव का भान होने से, पुण्य अच्छा और पाप बुरा – ऐसी पुण्य-

पाप में विषमता की दृष्टि दूर होकर साम्यभाव प्रगट हो, उसका नाम समता है। समताभाव कहो या ज्ञायकभाव कहो, वही चैतन्य की शांति का मार्ग है। सर्वज्ञदेव ने ज्ञान में चौदह ब्रह्माण्ड के मार्ग देखे, उनमें शांति का मार्ग एक साम्य ही है – ऐसा देखा है।

सच्चा समभाव किसके होता है ? लक्ष्मी, शरीर आदि परवस्तुएँ मेरी हैं, और मैं उनमें फेरफार कर सकता हूँ, ऐसी जिसकी मान्यता है, उसे अनुकूलता–प्रतिकूलता में समभाव नहीं रह सकता। लक्ष्मी हो या निर्धनता हो, वे दोनों मेरा स्वरूप नहीं हैं, मैं उन दोनों का ज्ञाता हूँ – ऐसा जिसने भान किया है, उसने उन दोनों में चैतन्य के लक्ष से समता की प्रतीति की है। समता का अर्थ ही ज्ञातापना है। मेरा आत्मा ज्ञाता है, किसी संयोग में फेरफार करने की मेरी शक्ति नहीं है और राग–द्वेष मेरा स्वरूप नहीं है। वस्तु में जो होता है, उसका मैं ज्ञाता ही हूँ – ऐसी ज्ञान स्वभाव की प्रतीति प्रगट हुए बिना किसी को साम्यभाव नहीं होता। शरीर में निरोगता हो या रोग हो, शत्रु हो या मित्र हो, शुभ हो या अशुभ हो तथा जीवन हो या मरण आये, उन सबमें मैं तो ज्ञाता ही हूँ, एक इष्ट और दूसरा अनिष्ट, ऐसा मेरा ज्ञान में नहीं है – ऐसी जिसे प्रतीति हुई है, उसे उन सब में समता ही है। अस्थिरता के अनुरूप राग–द्वेष हों, तथापि श्रद्धा–ज्ञान में साम्यभाव दूर नहीं होता। सर्वज्ञ भगवान जैसा ही मेरा ज्ञानस्वभाव है, जगत की समस्त वस्तुओं का मैं ज्ञाता–दृष्टा हूँ, ज्ञाता–दृष्टा चैतन्यस्वभाव के अतिरिक्त जगत में कोई वस्तु मेरी नहीं है, इसप्रकार जिसे चैतन्य की चिंता जागृत हुई है और चैतन्य के लक्ष से ज्ञातारूप रहकर सर्व को जानता रहता है, उसे सच्ची समता है, वही धर्म है और वही आत्मा की मुक्ति का उपाय है। इसके अतिरिक्त किसी परपदार्थ में न्यूनाधिकता करना माने तो समताभाव नहीं रह सकता, क्योंकि मैं पर में न्यूनाधिकता कर सकता हूँ – ऐसा जिसने माना है, उसे अपनी इच्छानुसार पर में होगा तो वहाँ मिथ्यात्वपूर्वक का राग और इच्छानुसार

नहीं होगा, वहाँ मिथ्यात्वपूर्वक का द्वेष हुए बिना नहीं रहेगा।

यहाँ श्री आचार्यदेव कहते हैं कि सर्वज्ञभगवान ने एक साम्यभाव को ही आत्मा की उपासना का मार्ग कहा है। देव-गुरु की सेवा करना, सो आत्मा की उपासना का मार्ग है - ऐसा नहीं कहा। पात्र जीव को सच्चे देव-गुरु की सेवा का शुभभाव भले हो, परन्तु उसका लक्ष्य यदि आत्मा की उपासना का न हो और वह देव-गुरु की सेवा के राग में ही धर्म मानकर रुक जाये तो भगवान उसे शांति का मार्ग नहीं कहते, चैतन्य की उपासना राग द्वारा नहीं होती। चैतन्य स्वभाव की सेवा का-उपासना का मार्ग स्वभाव ही है।

प्रथम शुद्ध आत्मा को पहिचान कर सम्यग्दर्शन प्रगट करना भी साम्यभाव है। मैं जगत का साक्षी-ज्ञाता हूँ, सारा जगत डिग जाये किन्तु अपने ज्ञातापने की प्रतीति न डिगे - ऐसा सम्यग्दृष्टि का साम्यभाव है और तत्पश्चात् स्वरूप में विशेष स्थिरता होने से ज्ञाताभाव और वीतरागभाव की वृद्धि हो जाने से राग-द्वेष भी न हो - वह चारित्र दशा का साम्यभाव है।

'जीवित के मरणे नहि न्यूनाधिकता
भवमोक्षे पण शुद्ध वर्ते समभाव जो...'

इसमें तो चारित्रदशा के उत्कृष्ट समताभाव की बात है। आत्मा के अनुभव में लीनता होने से ऐसा ज्ञाताभाव प्रगट होता है कि प्रतिष्ठा अच्छी और अप्रतिष्ठा बुरी, जीवन रहे तो ठीक और मरण बुरा, भव बुरा और मोक्ष हो तो अच्छा - ऐसा विकल्प भी नहीं उठता। ऐसा साम्यभाव आत्मा की उपासना का और मोक्ष का उपाय है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। किन्तु ऐसी समता कब आती है ? पहले नित्यानंद आत्मा को जाना हो तो उसमें एकाग्रता से जीवन-मरण आदि में समताभाव रहे। पर से भिन्न आत्मा के ज्ञानस्वभाव को जिसने जाना, उसे ज्ञान का समताभाव प्रगट हुए बिना नहीं रहेगा। यह समताभाव ही आत्मा की शांति का एकमात्र उपाय है।

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

द्वितीय अधिकार

छह माह का समय सामान्य रीति से कहा है। वैसे तो अन्तर्मुहूर्त में कार्य हो जाता है। राग और पुण्य पर दृष्टि है, उसको छोड़कर अर्न्तदृष्टि करने पर समयांतर में -एक समय में आत्मा का भान हो जाता है; परन्तु उसकी गतिविधि की रीति आनी चाहिए।

पिण्डस्थध्यान, संस्थानविचय ध्यान का भेद है। पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत इसप्रकार चार प्रकार का संस्थानविचय ध्यान होता है। शरीर में स्थित आत्मा का ध्यान पिण्डस्थ ध्यान, पाँचपद में स्थित पंचपरमेष्ठी का ध्यान पदस्थ ध्यान, रूपी शरीर में स्थित अरूपी आत्मा का ध्यान रूपस्थ ध्यान और शरीररहित आत्मा का ध्यान करना रूपातीत ध्यान कहलाता है।

आगे तीसरे कलश के चौथे पद्य में जीव-अजीव का लक्षण कहते हैं-

जीव और पुद्गल का लक्षण

चेतनवंत अनंत गुन, सहित सु आतमराम।
याते अनमिल और सब, पुद्गल के परिनाम।।4।।

अर्थः- जीव द्रव्य, चैतन्यमूर्ति और अनंतगुणसम्पन्न है, इससे भिन्न और सब पुद्गल की परिणति है।

भावार्थः- चैतन्य, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि आत्मा के अनंत गुण हैं और आत्मगुणों के सिवाय स्पर्श, रस, गंध, वर्ण वा शब्द, प्रकाश, धूप, चांदनी, छाया, अंधकार, शरीर, भाषा, मन, श्वासोच्छ्वास तथा काम, क्रोध, लोभ, माया आदि जो कुछ इन्द्रिय और मन गोचर हैं वे सब पौद्गलिक हैं।।4।।

काव्य - 4 पर प्रवचन

जीवद्रव्य चैतन्यमूर्ति है, अनन्तगुण सम्पन्न है। इससे भिन्न-अनमेल अन्य समस्त पुद्गल की परिणति है। शरीर, वाणी और मन तो जीव से

अनमेल पुद्गल के ही भाव हैं; परन्तु ज्ञाता स्वभाव के सामने तो दया, दानादि के परिणाम भी अनमेल भाव हैं। इस कारण यहाँ तो शुभाशुभ समस्त भावों को पुद्गल के परिणाम कह दिया है। ज्ञान की ज्योतिरूप वस्तु ही आत्मा है। इसके सिवाय व्रत-अव्रत के विकल्प उत्पन्न हो या शुभाशुभराग हो, वह पुद्गल का परिणाम है, तेरा परिणाम नहीं।

जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बँधता है, वह भाव पुद्गल का परिणाम है- ऐसा कहते हैं। सोलहकारण भावना का विकल्प राग है और राग है, वह पुद्गल है; क्योंकि राग से पुद्गल बँधता है और पुद्गल से प्राप्त संयोग भी पुद्गल है। उसमें कहीं चैंतन्य की गंध नहीं है। आत्मा के समीप जाकर आनन्द और शान्ति का वेदन करे तो उपवास कहलाता है, अन्य तो सब अपवास है। कदाचित राग की मन्दता के साथ हो तो भी पुण्यभाव है, शुभभाव है। वह आत्मा का स्ववशपना नहीं है, परवशपना है। अतः वह उपवास नहीं है, माठो वास है।

सम्प्रदाय में दीक्षा लेने के पहले शोभायात्रा निकालते हैं; परन्तु भाई! अभी तो दीक्षा क्या है इसका ही तुझको पता नहीं है। प्रत्येक प्रकार के पुण्य-पाप के विकल्प से आत्मा को भिन्न करके स्वरूप में स्थिरता, वह प्रथम सम्यग्दर्शन धर्म है। तत्पश्चात् स्वरूप के आनन्द में रमना, वह दीक्षारूप धर्म है।

'यातैं अनमिल और सब, पुद्गल के परिनाम।' -जितने विकल्प और रागादिरूप भाव होते हैं, वे आत्मा के स्वभाव से अनमेल भाव हैं, इसलिए उनको जीव नहीं कहकर अजीव पुद्गल कहते हैं। चैतन्य के ज्ञान-दर्शन-आनंद के अतिरिक्त समस्त विकाररूप भाव चैतन्य से अनमेल होने से पुद्गल हैं।

अहा..! सर्वज्ञ वीतराग देव और वीतरागी संतों के अलावा किसी की ताकत नहीं है कि राग को पुद्गल कह सके। महाव्रत के परिणाम को भी जड़-पुद्गल कौन कह सकता है? अनन्त गुण सम्पन्न आत्मा से भिन्न जो कोई परिणति है, वह पुद्गल की परिणति है। अनन्त गुणस्वरूप आत्मा में

एकाकार होकर श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता प्रगट होती है; वह आत्मा का परिणाम है, वही आत्मा का धर्म है, अन्य दूसरा कोई धर्म नहीं है। यह वीतरागी संतों की पुकार है।

भावार्थः- चैतन्य, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि आत्मा के अनन्त गुण हैं और आत्मा के गुणों के सिवाय स्पर्श, रस, गंध, वर्ण तथा शब्द, प्रकाश, धूप, चाँदनी, छाया, अंधकार, शरीर, भाषा, मन, श्वासोच्छवास तथा काम, क्रोध, लोभ, माया आदि जो कुछ इन्द्रिय और मनगोचर है वह सब पौद्गलिक हैं।

भगवान आत्मा अनन्त गुणस्वरूप है। चैतन्य, ज्ञान-दर्शनादि आत्मा के गुण हैं; परन्तु जो ये स्पर्श, रसादि तथा भाषा, मन, श्वासोच्छवास आदि होते हैं वे आत्मा के गुण नहीं है। यह सब तो जड़ की अवस्था है। इसलिये जड़ ही है। जीव का उसमें कुछ नहीं है। श्वास की क्रिया करना भी आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। अजीव में जीव की सत्ता बिलकुल नहीं हैं।

जीव अधिकार में जीव में क्या-क्या है -यह बताया और यहाँ अजीव अधिकार में यह बताते हैं कि जीव में क्या-क्या नहीं है। जीवतत्त्व सबसे भिन्न है। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है। शरीर का अस्तित्व जीव से भिन्न है। शरीर, भाषा, मन आदि सब अजीव है। अजीव के अस्तित्व में जीव का अस्तित्व नहीं है और जीव के अस्तित्व में अजीव का अस्तित्व नहीं है। जीव के अस्तित्व में तो ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुण विद्यमान हैं।

जब प्रत्येक द्रव्य का अस्तित्व भिन्न ही है वहाँ कौन किसका करे? शरीर, मन, वाणी को तो आत्मा नहीं करता; परन्तु क्रोध, मान, माया, लोभादिक परिणाम भी इन्द्रिय और मनगोचर होने से पौद्गालिक हैं। आत्मा उनको नहीं करता है। आत्मा में तो ज्ञान, दर्शन और आनन्द भरा हुआ है, आत्मा में क्रोध, मानादि के परिणाम भरे हुए नहीं हैं। आत्मा में भाषा, मन आदि का परिणमन होने योग्य नहीं है।

प्रश्नः- क्रोध, मानादि परिणाम तो जीव में होते हैं न.. ?

पूज्य गुरुदेवश्री:- प्रश्न बराबर है। जीव की पर्याय में क्रोध, मानादि के भाव होते हैं; परन्तु जीव द्रव्य में अथवा जीवद्रव्य के गुणों में नहीं होते। जीव की पर्याय में अज्ञान के कारण ऐसी अशुद्धदशा होती है; परन्तु वह जीव का स्वभाव नहीं है। जीव का परिणमन तो जानने-देखनेरूप हो -ऐसा जीव का स्वभाव है। राग-द्वेषरूप होने का जीव का स्वभाव नहीं है। पर्यायबुद्धि में अज्ञानभाव से विकार करता है, वह चैतन्य की अशुद्धदशा है; स्वभाव नहीं। स्वभाव का अनादर करके हुआ भाव है। इसलिए जीव स्वभाव की दृष्टि से देखें तो वह जीव का कार्य नहीं है।

शरीर, वाणी, मन और विकल्प इस चैतन्य स्वभाव को स्पर्श नहीं करते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभादि परिणाम अचेतन हैं, पौद्गालिक हैं, मन और इन्द्रियगम्य हैं। उन्होंने चैतन्य-समुद्र को स्पर्श नहीं किया है।

जो चैतन्य के चैतन्यभाव को दृष्टि में ले और अन्य सर्व अचेतन भावों को दृष्टि में से छोड़ दे, उसी ने चैतन्य को माना कहा जाता है, उसे ही आत्मज्ञान हुआ कहा जाता है।

अब चौथे कलश का पाँचवा काव्य आता है जिसमें कवि आत्मज्ञान का परिणाम बताते हैं-

आत्मज्ञान का परिणाम

जब चेतन सँभारि निज पौरुष,
निरखै निज दृगसौं निज मर्म।
तब सुखरूप विमल अविनासिक,
जानै जगत सिरोमनि धर्म।।
अनुभौ करै सुद्ध चेतनकौ,
रमै स्वभाव वमै सब कर्म।
इहि विधि सधै मुकतिकौ मारग,
अरु समीप आवै सिव सर्म।।5।।

अर्थ:- जब आत्मा अपनी शक्ति को सम्हालता है और ज्ञाननेत्रों से अपने असली स्वभाव को परखता है तब वह आत्मा का स्वभाव आनंदरूप,

निर्मल, नित्य और लोक का शिरोमणि जानता है, तथा शुद्ध चैतन्य का अनुभव करके अपने स्वभाव में लीन होकर सम्पूर्ण कर्मदल को दूर करता है। इस प्रयत्न से मोक्षमार्ग सिद्ध होता है और निराकुलता का आनंद निकट आता है ।।5।।

क्रमशः

अक्टूबर 2022 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

2 अक्टूबर – आश्विन शुक्ल 7
सर्वार्थसिद्धि योग
3 अक्टूबर – आश्विन शुक्ल 8, **अष्टमी**
भगवान शीतलनाथ निर्वाण कल्याणक
5 अक्टूबर – आश्विन शुक्ल 10
विजयादशमी
6 अक्टूबर – आश्विन शुक्ल 11
मुक्तावली व्रत
8 अक्टूबर – आश्विन शुक्ल 14
चतुर्दशी
9 अक्टूबर – आश्विन शुक्ल पूर्णिमा
सर्वार्थसिद्धि योग, शरद पूर्णिमा
10 अक्टूबर – कार्तिक कृष्ण 1
भगवान अनन्तनार्थ गर्भ कल्याणक
11 अक्टूबर – कार्तिक कृष्ण 2
सर्वार्थसिद्धि योग, अमृतसिद्धि योग
13 अक्टूबर – कार्तिक कृष्ण 4
भगवान सम्भवनाथ ज्ञान कल्याणक
14 अक्टूबर – कार्तिक कृष्ण 5
रोहिणी व्रत
16 अक्टूबर – कार्तिक कृष्ण 7
त्रिपुष्कर योग
18 अक्टूबर – कार्तिक कृष्ण 8, **अष्टमी**
22 अक्टूबर – कार्तिक कृष्ण 12
त्रिपुष्कर योग, मुक्तावली व्रत
23 अक्टूबर – कार्तिक कृष्ण 13
भगवान पद्मप्रभ जन्म तप कल्याणक
धन्यतेरस, सर्वार्थसिद्धियोग
24 अक्टूबर – कार्तिक कृष्ण 14,
चतुर्दशी, वर्षायोग पूर्ण
दीपावली
25 अक्टूबर – कार्तिक कृष्ण अमावस्या
दीपावली, भगवान महावीरस्वामी
निर्वाण कल्याणक
श्री गौतमस्वामी ज्ञान कल्याणक
26 अक्टूबर – कार्तिक शुक्ल 1
मुक्तावली व्रत
वीर निर्वाण सं. 2549 प्रा.
27 अक्टूबर – कार्तिक शुक्ल 2
भगवान पुष्पदंत ज्ञान कल्याणक
सर्वार्थसिद्धि योग, भाई दोज
28 अक्टूबर – कार्तिक शुक्ल 3-4
सर्वार्थसिद्धि योग, मुक्तावली व्रत
30 अक्टूबर – कार्तिक शुक्ल 6
भगवान नेमिनाथ गर्भ कल्याणक
सर्वार्थसिद्धि योग, त्रिपुष्कर योग

गतांक से आगे

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

श्रुत के पर्यायवाची

प्रवचनाद्धा—अद्धा, काल को कहते हैं, प्रकृष्ट अर्थात् शोभन वचनों का काल जिस श्रुति में होता है, वह प्रवचनाद्धा है। प्रवचनाद्धा अर्थात् श्रुतज्ञान है।

प्रवचन सन्निकर्ष—प्रकर्षरूप से वचन अर्थात् जीवादि पदार्थ अनेकान्तात्मकरूप से जिसके द्वारा संन्यस्त अर्थात् प्ररूपित किए जाते हैं, वह प्रवचन संन्यास अर्थात् उक्त द्वादशांग श्रुतज्ञान ही है।

नयविधि—नय नैगम आदिक हैं। वे सत् व असत् आदि स्वरूप से जिसमें 'विधीयन्ते' अर्थात् कहे जाते हैं, वह नयविधि आगम है। अथवा नैगमादि नयों के द्वारा जीवादि पदार्थों का जिसमें विधान किया जाता है, वह नयविधि आगम है।

नयान्तरविधि—नयान्तर अर्थात् नयों के नैगमादि सात सौ भेद विषय सांकार्य के निराकरण द्वारा जिसमें विहित अर्थात् निरूपित किए जाते हैं, वह नयान्तरविधि अर्थात् श्रुतज्ञान है।

भंगविधि—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शीलगुण, नय, वचन और द्रव्यादिक के भेद भंग कहलाते हैं। उनका जिसके द्वारा विधान किया जाता है, वह भंगविधि अर्थात् श्रुतज्ञान है। अथवा भंग का अर्थ स्थिति और उत्पत्ति का अविनाभावी वस्तुविनाश है। वह जिसके द्वारा विहित अर्थात् निरूपित किया जाता है, वह भंगविधि अर्थात् श्रुत है।

भंगविधि विशेष—विधि का अर्थ विधान है। भंगों की विधि अर्थात् भेद 'विशेष्यते' अर्थात् पृथक् रूप से जिसके द्वारा निरूपित किया जाता है, वह भंगविधि विशेष श्रुतज्ञान है।

पृच्छाविधि—द्रव्य, गुण और पर्याय के विधि-निषेध विषयक प्रश्न

का नाम पृच्छा है। उसके क्रम और अक्रम तथा प्रायश्चित्त का जिसमें विधान किया जाता है, वह पृच्छाविधि अर्थात् श्रुत है। अथवा पूछा गया अर्थ पृच्छा है। वह जिसमें विहित की जाती है अर्थात् कही जाती है, वह पृच्छाविधि श्रुत है।

पृच्छाविधि विशेष—विधान करना, विधि है। पृच्छा की विधि, पृच्छाविधि है। वह जिससे विशिष्ट की जाती है, वह पृच्छाविधि विशेष है।

तत्त्व—'तत्' इस सर्वनाम से विधि की विवक्षा है। 'तत्' का भाव, तत्त्व है।

प्रश्न—श्रुत की विधि संज्ञा कैसे है ?

उत्तर—चूँकि वह सब नयों के विषय के अस्तित्व का विधायक है, इसलिए श्रुत की विधि संज्ञा उचित ही है। तत्त्व श्रुतज्ञान है।

श्रुत—आगम अतीत काल में था, इसलिए उसकी भूत संज्ञा है।

भव्य—वर्तमान काल में है, इसलिए उसकी भव्य संज्ञा है।

भविष्यत—आगम भविष्यत काल में रहेगा, इसलिए उसको भविष्यत संज्ञा है।

अवितथ—वितथ और असत्य समानार्थक शब्द हैं। जिस श्रुतज्ञान में वितथपना नहीं पाया जाता, वह अवितथ अर्थात् तथ्य है।

अविहत—मिथ्यादृष्टियों के वचन द्वारा जो न वर्तमान में हता जाता है, न भविष्य में हता जा सकेगा और न भूतकाल में हता गया, वह अविहत श्रुतज्ञान है।

वेद—अशेष पदार्थों को जो वेदता है, वेदेगा और वेद चुका है, वह वेद अर्थात् सिद्धांत है। सूत्रकण्ठों अर्थात् ब्राह्मणों की मिथ्या कथा रूप ग्रन्थ वेद है। इसमें इसका निराकरण किया गया है।

न्याय्य—न्याय से युक्त है, इसलिए श्रुतज्ञान न्याय्य कहलाता है। अथवा ज्ञेय का अनुसरण करनेवाला होने से या न्यायरूप होने से सिद्धान्त को न्याय्य कहते हैं।

क्रमशः

कवि परिचय

कविवर भगवतीदास

कविवर भगवतीदासजी, 'भैया' भगवतीदासजी से भिन्न हैं। आप उनसे पूर्व हुए थे परन्तु आपका जन्म संवत्, मृत्यु संवत् ज्ञात नहीं हो सका है। आपकी रचनाओं का एक संग्रह दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर मैनपुरी के शास्त्र भण्डार में है, जिसका लेखन संवत् 1680 में सम्पन्न हुआ था। यह गुटका स्वयं कविवर के हाथ का लिखा हुआ है।

कविवर ने उस समय जहाँगीर बादशाह का समय बताया है। अत: कविवर का समय इसी के अनुसार समझना चाहिए। जो कि सन् 1605 से 1662 तक का माना जाता है।

कविवर ने अपने आपको काष्ठासंघी माथुरान्वयी पुष्कर गनीय भट्टारक सकलचन्द के पट्टधर मण्डलाचार्य माहेन्द्रसेन का शिष्य बताया है। कविवर अग्रवाल दिगम्बर जैन समाज के रत्न थे। आपने अनेक स्थानों पर निवास किया और धर्म-प्रचार हेतु सहयोग दिया। वैसे आप सहजादिपुर के निवासी थे। बाद में आप संकिसा और कवि स्थल (कैथिया) में आकर रहे (यह स्थान फर्रुखाबाद जिले, उत्तरप्रदेश में है) मैनपुरी शास्त्र भण्डार में प्राप्त गुटका भी संकिसा में ही कविवर ने लिपिबद्ध किया है। डॉ० प्रेमसागर जैन ने इन्हें बूढ़िया का निवासी बताया है? बाद में ये जोगिनीपुर (दिल्ली) रहने लगे।

कविवर की भाषा में अपभ्रंश एवं प्राकृत के शब्द भी बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। अन्य बोलियों एवं भाषाओं के शब्दों का प्रयोग आपने स्वतन्त्रतापूर्वक किया है।

कविवर की लगभग 25 कृतियाँ उपलब्ध हैं। इनकी रचना अनेक स्थानों पर हुई हैं। जैसे आगरा, दिल्ली, हिसार, कैथिया, संकिसा आदि। कविवर ने कुछ रचनाएँ शाहजहाँ के शासन काल में भी पूर्ण की हैं। अपनी कृतियों में कविवर ने जहाँगीर की बड़ी प्रशंसा की है।

कविवर की रचनाएँ भक्ति एवं अध्यात्म से परिपूर्ण हैं। इनमें साहित्यिक प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। इनमें एक ज्योतिष से सम्बन्धित 'ज्योतिषसार' और वैद्यक से सम्बन्धित 'वैद्य विनोद' नामक रचनाएँ भी हैं।

रचनाएँ—

'मुगति रमणी चूनणी' एक रूपक काव्य है। इसमें मुक्ति-रमणी को चूनणी

बनाया गया है। यह चूनणी ज्ञानरूपी सलिल में (पानी) में भिगोकर सम्यक्त्वरूपी रंग में रंगी जाती है। 35 पद्यों में रचित यह रचना अभूतपूर्व आध्यात्मिक रंग में रंगी हैं। इस मुक्ति चूनणी (चुनरी) को ओढ़कर ही आत्म कल्याण हो सकता है। इसकी रचना संवत् 1680 में बूढ़िया में हुई थी।

'लघु सीतासतु' की रचना संवत् 1687 में हुई, इसके पूर्व 'वृहत्सीतासतु' का निर्माण हुआ था परन्तु कवि ने इसे बड़ी रचना जान इसका संक्षिप्त रूप 'लघु सीतासतु' में किया। पंचायती जैन मन्दिर दिल्ली में इसकी हस्तलिखित प्रति विद्यमान है। इसके अन्तर्गत मन्दोदरी सीता को रावण वरण हेतु प्रेरित करती है। दोनों के (मन्दोदरी एवं सीता के) संवाद रूप में यह रचना बारह मासे की शैली पर लिखी गई है।

कविवर ने अनेक रासों की रचना की है। इनमें 'मनकरल रास', 'जोगीरास', 'टंडाणा रास', 'खिचड़ी रास', 'आदित्य व्रत रास', 'पखवाड़ा रास', 'दशलक्षण रास', 'साधु समाधि रास', 'रोहिणीव्रत रास' आदि हैं।

'मनकरल रास' में मन को करहा (ऊँट) बनाया गया है और संसार रूपी मरुस्थल में मनरूपी करहा के भ्रमण की बात इसके अन्तर्गत कही गयी है। यह रचना एक मौलिक कृति है। सरसता इसका प्रधान गुण है। 'जोगीरास' में 38पद्य हैं, जबकि 'मन करहा रास' में 25 हैं। 'जोगीरास' में बताया गया है कि यह जीव इन्द्रिय सुख के कारण संसार में भटक रहा है। मन को स्थिर करके उसे स्वयं अपनी (आत्मा की) उपासना में तल्लीन होना चाहिए। ऐसा आत्म भजन करने से वह इस भवसागर से पार हो सकेगा। देखिये सद्गुरु का आह्वान –

पेखहु हो तुम पेखहु भाई,
जोगी जगमहिं सोई।
घट-घट अन्तरि बसइ चिदानन्दु,
अलखुन लखिए कोई॥
भव वन भूल रह्यो भ्रमिराबलु,
सिवपुर सुध बिसराई।
परम अतीन्द्रिय शिवसुख तजि करि,
विषयनि रहिउ लुभाई॥
अनन्त चतुष्टय गुण गण राजहिं,
तिन्हकी हऊं बलिहारी।

मनि धरि ध्यान करहु शिवनायक,
जिय उतरहु भवपारी।

'टंडाणा रास' में कविवर ने बताया है कि यह जीव ज्ञानी है पर अपने ही गुणों को त्याग कर अज्ञानी बन गया है। अत: उसे आत्मगुणों की ओर देखना चाहिए और अपना कल्याण करना चाहिए।

'चतुर बनजारा' में 35 पद्य हैं। यह एक रूपक काव्य है, जिसमें जीव को चतुर बनजारा कहा गया है, यह चतुर व्यक्ति अपने अनुभव के बल पर ही आत्म शक्ति का परिचय पाकर और संसार को असार जान आत्मकल्याण में प्रवृत्त होता है।

'वीर जिनिन्दगीत' में महावीर स्वामी की स्तुति है। 'राजमती नेमीसुर ढमाल' में नेमि भगवान एवं राजुल के प्रसिद्ध कथानक पर 35 पद्य हैं।

'अनेकार्थ नाममाला' एक कोष ग्रन्थ है। इसकी रचना संवत् 1687 में हुई। (बनारसीदासजी की नाममाला के 17 वर्ष बाद) अनेकार्थ शब्दों का यह पद्यबद्ध कोष हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है। इसकी प्रति दिल्ली के पंचायती मन्दिर में है।

मृगांक-लेखा चरित संवत् 1700 में हुई इसकी भाषा अपभ्रंश है। यह अपभ्रंश की अन्तिम कृति मानी जाती है। इसमें चन्द्रलेखा और सागरचन्द्र के चरित्र को अंकित किया गया है। यह सुन्दर खण्ड काव्य है। अनेक आपत्तियों के आने पर भी चन्द्रलेखा अपने सतीत्व पर अटल बनी रही। कथानक प्रभावपूर्ण है।

कविवर के द्वारा कुछ कथाएँ भी लिखी गई हैं। इनमें 'आदित्यवार कथा', 'सुगन्धदशमी कथा', 'अनथमी कथा' प्रमुख हैं। 'आदिनाथ' एवं 'शान्तिनाथ' स्तवन भी आपने लिखे हैं।

इस प्रकार पण्डित भगवतीदासजी हिन्दी साहित्य के एक अमूल्य रत्न थे। जिनका लक्ष्य एवं सन्देश यह था—

धर्म्म सुकल धरि ध्यानु अनूपम,
लहिं निज केवल नाणा वे।
जंपति दास भगवती पावहु,
सासउ - सुहु निव्वाला रे॥

प्रेरक-प्रसंग

धन्य, वह क्षमा

नन्द वंश के अन्तिम सम्राट महाराज पद्मनन्द के विलासी जीवन ने मगध साम्राज्य को क्षीण–काय बना दिया था। प्रजा भी दुःखी हो उठी थी। ऐसे अवसर पर दूरदर्शी राजनीतिज्ञ चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त ने नन्द साम्राज्य को जीतकर अपना लोकप्रिय साम्राज्य स्थापित कर दिया; किन्तु पद्मनन्द का प्रधान अमात्य राक्षस, सम्राट चन्द्रगुप्त को सहन नहीं कर पा रहा था। उसने स्वामीभक्ति का परिचय देने के लिए चन्द्रगुप्त को समाप्त करने के लिए अनेक षडयन्त्र रचे, किन्तु चाणक्य की चतुराई से प्रत्येक षड्यन्त्र विफल रहा। फिर भी उसने अपने प्रयत्न चालू रखे।

अन्त में अमात्य राक्षस ने एक भयंकर षड्यन्त्र की रचना की। उसने चाणक्य की मुहर किसी तरह प्राप्त कर एक पत्र को हस्ताक्षरित कर और चाणक्य की मुहर लगाकर एक भयंकर बीहड़ जंगल में आवश्यक कार्य का बहाना बनाकर बुलाने के लिए महामात्य का आज्ञापत्र चन्द्रगुप्त के पास भेज दिया।

चाणक्य को इस षड्यन्त्र का भी पता लग गया। जंगल के उस स्थान पर कुछ प्रमुख सैनिकों को छिपाकर चन्द्रगुप्त के साथ चाणक्य रात्रि में स्वयं जंगल में गया। एक सैनिक को यथास्थान खड़ा करके स्वयं को और चन्द्रगुप्त को एक वृक्ष की ओट में छिपा लिया।

इतने में राक्षस मन्त्री के दो सैनिकों ने उस खड़े हुए सैनिक को चन्द्रगुप्त समझकर आक्रमण कर दिया। छिपे हुए सैनिकों ने आक्रमणकारी दोनों सैनिकों को अपनी गिरफ्त में लिया। यह सब घटित होने के पश्चात् एक तरफ महामात्य राक्षस आ गया और उसने चन्द्रगुप्त को मरा हुआ समझकर बड़ी खुशी मनाई। इतने में दूसरी ओर से अन्धेरे में ही वहीं पर चन्द्रगुप्त और चाणक्य भी आ गये। मशाल जलाकर उन सबने एक दूसरे को देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया।

महामात्य राक्षस ने कहा – चाणक्य हमें गिरफ्तार कर जो सजा देना चाहते हो, अवश्य दो। हम तुम्हारे अपराधी हैं। हमारे सभी दाँव खाली गये। अब तो तुम्हारा दाँव है। जैसा करना चाहो, कर सकते हो।

चाणक्य ने कहा – महामात्य! आप हमारे बन्धन में है; अतः आपको इसकी सजा भी भुगतनी होगी। अब आपको चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का महामात्य पद स्वीकार कर संचालन करना है। यही आपकी सजा है।

राक्षस ने इसे व्यंग्य समझ कर कहा – आपका यह व्यंग्य मृत्यु–दण्ड से भी अधिक भंयकर है। आप मौत के घाट उतार सकते हैं, किन्तु ऐसे व्यंग्य– बाण न छोड़े।

तभी चन्द्रगुप्त ने कहा – महामात्य! आपको यह भार स्वीकार करना ही होगा। यह मेरा आपसे विनम्र निवेदन है। राक्षस को स्वप्न में ऐसी कल्पना नहीं थी कि एक दुश्मन के साथ कोई ऐसा बर्ताव करेगा।

तभी चाणक्य ने कहा – मेरे निमित्त से यह कार्य पूर्ण हो गया। अब मुझे अपना आत्मकल्याण का कार्य करना है, अतः मैं आपसे इस भिक्षा की याचना कर रहा हूँ। राक्षस हक्का–बक्का रह गया। उसने सोचा – ये दोनों कितने विशाल हृदय के हैं, जो अपने दुश्मन को राज्य – कार्य समर्पित कर रहे हैं। राक्षस अभिभूत हो गया, उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। उसने क्षमा–याचना करते हुए अपनी स्वीकारता प्रदान कर दी।

शिक्षा – शुत्रता को क्षमा व उदारता से ही जीता जा सकता है। महान पुरुष शत्रु का नाश नहीं करते अपितु शत्रुता का नाश करते हैं।

वैराग्य समाचार

गढ़ाकोटा : डॉ. शिखरचन्द जैन बैसाखिया का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप गढ़ाकोटा मुमुक्षु समाज के आधारस्तम्भ थे। तीर्थधाम मङ्गलायतन की स्थापना से ही आप जुड़े हुए थे।

फिरोजाबाद : श्रीमती पूनम जैन का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप धार्मिक, उत्साही व भद्रपरिणामी महिला थीं। आपका सम्पूर्ण परिवार तत्त्वज्ञान से व तीर्थधाम मङ्गलायतन से जुड़ा हुआ है। आप पण्डित अनन्तवीर, अरहन्तवीर शास्त्री की माताजी थीं।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

"जिस प्रकार–उसी प्रकार" में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– बुखार ज्यादा हो या कम, रखने लायक नहीं है, दूर करने लायक है।

उसी प्रकार– राग तीव्र हो (पापरूप) या मन्द हो (पुण्यरूप) दोनों दूर करने लायक है। सिद्ध भगवान को कोई भी राग नहीं है। पुण्य–पाप दोनों से रहित है।

जिस प्रकार– पहाड़ों के पत्थरों में भगवान बने बनाये होते है। कुशल एवं निपुण शिल्पकार तो मात्र फालतू लगे पत्थर अलग करता है।

उसी प्रकार– शरीर के अन्दर विराजमान आत्मा तो बना–बनाया भगवान है। ज्ञानी जीव तो फालतू लगे भावकर्म, द्रव्यकर्म, नौ कर्मों को पुरुषार्थपूर्वक आत्मा से अलग करता है।

जिस प्रकार– काष्ट अथवा पत्थर से बनी स्त्री जो अश्लील मुद्रा में हो, आसक्तिपूर्वक देखने से अश्लील भाव ही पैदा करती है।

उसी प्रकार– धातु, पत्थर, हीरे आदि से बनी प्रतिमा जो वीतरागी मुद्रा में हो, दर्शन करने से वीतराग एवं शान्त परिणाम ही पैदा करती है। अतः जिन प्रतिमा के दर्शन का निषेध योग्य नहीं है।

जिस प्रकार– अगर कोई रोगी 99 बुखार को अच्छा मान कर इलाज न करे, तो टी. बी. हो जाती है।

उसी प्रकार– अगर कोई मन्द कषायों को अर्थात शुभ भावों को अच्छा मानकर दूर करने का उपाय न करे तो दुर्गति का ही कारण होता है।

जिस प्रकार– जगत में वस्तु जैसी हो, उससे विपरीत बतलाने वाले को लोग मूर्ख कहते है।

उसी प्रकार– सर्वज्ञ कथित यह लोकोत्तर वस्तु स्वभाव जैसा है वैसा न मानकर विरुद्ध माने तो वह मूर्ख और अविवेकी है। शरीर की क्रियाओं को आत्मा की माने तो वह मूर्ख ही है।

जिस प्रकार– सर्प को दूध पिलाने पर उसका जहर ही बढ़ता है।

उसी प्रकार– पापी जीवों के साथ किया गया सद्व्यवहार भी उन्हें तिरस्कार जैसा लगता है और उनके बैर को ही बढ़ाता है।

क्रमशः संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन से

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना अनवरत प्रवाहित

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रथम बार कीर्तिमान रचते हुए प्रथम श्रुतस्कन्ध **'षट्खण्डागम धवला टीका सहित'** वाँचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 05 दिसम्बर 2020 से करणानुयोग की विशेषज्ञ बालब्रह्मचारी कल्पनाबेन द्वारा अनवरत प्रारम्भ है। जिसकी प्रथम पुस्तक की वाँचना का समापन 31 मार्च 2021 को; द्वितीय पुस्तक की वाँचना का प्रारम्भ 01 अप्रेल से, समापन 08 जुलाई 2021 को; तृतीय पुस्तक की वाँचना का प्रारम्भ 09 जुलाई 2021 तथा समापन 24 अक्टूबर 2021 को और चतुर्थ पुस्तक की वाँचना का प्रारम्भ 25 अक्टूबर 2021 से 27 फरवरी 2022 को और पंचम पुस्तक की वाँचना का 28 फरवरी 2022 से 24 अप्रेल 2022 तथा छठवीं पुस्तक की वाँचना का 25 अप्रेल से 02 अगस्त तक भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई। **इस प्रकार प्रथम खण्ड की वाँचना निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न हुई।**

प्रथम खण्ड की संक्षिप्त विषयवस्तु इस प्रकार रही है—

षट्खण्डागम में छह खण्ड हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

1. जीवट्ठाण (जीवस्थान), 2. खुद्दाबन्ध (क्षुल्लकबन्ध), 3. बंधसामित्तविचय (बन्धस्वामित्वविचय), 4. वेदना, 5. वर्गणा, 6. महाबन्ध।

इसके मुख्यत: दो विभाग हैं। प्रथम विभाग के अन्तर्गत जीवट्ठाण, खुद्दाबन्ध और बन्धसामित्त विचय - ये तीन खण्ड हैं। इन तीनों का मंगलाचरण, श्रुतावतार आदि एक ही बार जीवट्ठाण के प्रारम्भ में किया गया है और उन सबका विषय भी जीव या बन्धक की मुख्यता से है। जीवट्ठाण में गुणस्थान और मार्गणाओं की अपेक्षा सत्, संख्या आदि रूप से जीवतत्त्व का विचार किया गया है। खुद्दाबन्ध में सामान्य की अपेक्षा बन्धक का वर्णन है और बन्धस्वामित्वविचय में विशेष की अपेक्षा बन्धक का विवरण है।

दूसरे विभाग के आदि में पुन: मंगलाचरण और श्रुतावतार दिया गया है। इस समस्त विभाग में प्रधानता से कर्मों की समस्त दशाओं का विवरण है। इसमें कृति, वेदना आदि चौबीस अधिकारों का क्रमश: वर्णन किया गया है। इन चौबीसों में से द्वितीय अधिकार वेदना का विस्तार से वर्णन किये जाने के कारण चौथे खण्ड को वेदना यह नाम मिला है। बन्धन अधिकार के तीसरे भाग बन्धनीय में वर्गणाओं का विस्तार से

वर्णन होने के कारण वर्गणा नाम का पाँचवाँ खण्ड हो गया। छठे खण्ड में इसी बन्धन के चौथे भेद बन्धविधान का खूब विस्तार से वर्णन किया गया है, इसलिए उसे 'महाबन्ध' यह नाम मिला है। बारहवें दृष्टिवाद अंग के अन्तर्गत चौदह पूर्व हैं। उनमें से द्वितीय अग्रायणीय पूर्व के पाँचवें चयनलब्धि नामक वस्तु अधिकार के चौथे महाकर्मप्रकृति प्राभृत में से षट्खण्डागम की रचना हुई है।

इसमें आठ अनुयोगद्वार हैं। वे इस प्रकार हैं — 1. सत्प्ररूपणा, 2. द्रव्य प्रमाणानुगम, 3. क्षेत्रप्रमाणानुगम, 4. स्पर्शनानुगम, 5. कालानुगम, 6. अन्तरानुगम, 7. भावानुगम और 8. अल्पबहुत्वानुगम।

जीवट्ठाण के अन्तर्गत —1. सत्, 2. संख्या, 3. क्षेत्र, 4. स्पर्शन, 5. काल, 6. अन्तर, 7. भाव और 8. अल्पबहुत्व, ये आठ अनुयोगद्वार, तथा 1. प्रकृति समुत्कीर्तना, 2. स्थानसमुत्कीर्तना, 3-5. तीन महादण्डक, 6. जघन्य स्थिति, 7. उत्कृष्ट स्थिति, 8. सम्यक्त्वोत्पत्ति और 9. गति-आगति ये नौ चूलिकाएँ हैं।

इस खण्ड का परिमाण धवलाकार ने अठारह हजार पद कहा है। पूर्वोक्त आठ अनुयोगद्वार और नौ चूलिकाओं में गुणस्थान और मार्गणाओं का आश्रय लेकर यहाँ विस्तार से वर्णन किया गया है।

द्वितीय खण्ड खुद्दाबन्ध (क्षुल्लकबन्ध)

सातवीं पुस्तक की वाचना 03 अगस्त 2022 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - विदुषी बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं सहयोगी भाई-बहिनों तथा मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन) **षट्खण्डागम (धवलाजी)**

रात्रि 07.30 से 08.30 बजे तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

08.30 से 09.15 बजे तक **समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - mang4321 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

वात्सल्य पर्व सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : वात्सल्य पर्व के अवसर पर प्रातः प्रक्षाल, पूजन, श्री रत्नत्रय विधान और वात्सल्य पर्व कथा पर पण्डित सचिन जैन का मार्मिक व्याख्यान का लाभ मिला। तत्पश्चात् जन का मिलन, साधर्मी वात्सल्य कार्यक्रम आयोजित किया गया। दोपहर में बालब्रह्मचारिणी द्वारा धवला वाचना, सायंकाल श्री जिनेन्द्रभक्ति एवं मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम के अन्तर्गत 'मिथ्यात्व का प्रतिशोध' नाटक का मंचन किया गया। इस अवसर पर विद्यानिकेतन के छात्रों को पुरस्कार वितरण भी किया गया।

इस अवसर पर सभी मंगलार्थी छात्रों के अभिभावक भी उपस्थित थे।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में धर्मप्रभावना

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ मङ्गलार्थी छात्रों के ज्ञानवर्धन हेतु आग्रह पर पधारे पण्डित गुलाबचन्द जैन, बीना द्वारा 13 अगस्त से 18 अगस्त 2022 तक प्रातः समयसारजी की विभिन्न गाथायें एवं सायंकाल मोक्षमार्गप्रकाशकजी के आधार से उभयाभासी मिथ्यादृष्टि विषय पर विशेष कक्षाओं का लाभ मिला। इसी के साथ-साथ पण्डित अनुभव शास्त्री, खनियांधाना द्वारा 14 अगस्त से 19 अगस्त 2022 तक 'जैन इतिहास एवं जैन भाषा विज्ञान' इन विषयों को लेकर सारगर्भित मङ्गलार्थी छात्रों को कक्षाओं का लाभ दिया गया।

दोनों ही विद्वानों के द्वारा भविष्य में भी इसी प्रकार पुनः-पुनः मङ्गलायतन पधारने का आश्वासन प्राप्त हुआ।

स्वतंत्रता दिवस सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मंगलायतन में स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य पर कार्यक्रम का आयोजन हुआ। कार्यक्रम की शुरुआत ढोल ताशे के घोष से हुई तथा प्रमुख महानुभावों द्वारा राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया। तत्पश्चात राष्ट्रगानपूर्वक मंगलार्थी आकिंचन जैन एवं सोहम जैन ने अपने विचार व्यक्त किए एवं मंगलार्थी ध्रुव जैन ने वाद्य यन्त्र द्वारा देशभक्ति प्रस्तुत की।

कार्यक्रम में पण्डित गुलाबचंद जैन, बीना; पण्डित नागेश जैन, पिड़ावा; पण्डित ऋषभ जैन, दिल्ली; पण्डित अनुभव शास्त्री, खनियांधाना; श्री रजनीभाई गाँधी, इन्दौर; पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, श्री अनिल जैन, श्री सुनील जैन, महासचिव स्वप्निल जैन, समस्त मंगलार्थी छात्र, बाहर से पधारे हुए साधर्मी भाई-बहिन आदि उपस्थित थे।

कार्यक्रम में देश की संस्कृति एवं स्वतन्त्रता के साथ-साथ जैन शासन में वर्णित

वस्तु स्वातन्त्र्य का भी उद्घोष किया गया। यदि भारतीय संस्कृति जन-जन की स्वतन्त्रता का आह्वान करती है वही जैनदर्शन के सिद्धान्त, कण-कण की स्वतन्त्रता की घोषणा की बात बतलाते हैं।

कार्यक्रम में इन्दौर से पधारे साधर्मी बन्धु भी शामिल थे। कार्यक्रम का संचालन मंगलार्थी समकित शास्त्री ने किया। इस अवसर पर तीर्थधाम मंगलायतन को आर्थिक सहयोग भी प्राप्त हुआ।

तीर्थधाम चिदायतन हस्तिनापुर में चौबीस तीर्थंकर विधान सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम चिदायतन : चौबीस तीर्थंकर विधान के आयोजन में मुख्यरूप से पण्डित श्री नागेश जैन, पिड़ावा; डॉ. मनीष शास्त्री, मेरठ; डॉ. नितिन शास्त्री, भोपाल; ब्रह्मचारिणी बहिन श्रद्धा जैन, ब्रह्मचारिणी बहिन प्रतीति जैन देवलाली का समागम मिला।

सभी उपस्थित साधर्मी भाई-बहिनों ने अति भक्ति भावपूर्वक विधान पूजन भक्ति का लाभ लिया। पण्डित मनीष शास्त्री के ग्रन्थाधिराज समयसार पर मार्मिक प्रवचन हुए।

कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण आत्मार्थी ट्रस्ट दिल्ली के आदिनाथ विद्यानिकेतन की लगभग 50 बालिकाओं का मनोभाव से कार्यक्रम में सम्मिलित होना रहा।

पण्डित नागेश जैन पिड़ावा ने 'बोलता समयसार' ग्रन्थ की रूपरेखा से सभी को अवगत कराया तथा सभी को प्रेरणा दी कि जिस प्रकार भारत सरकार ने हर घर तिरंगा का अभियान चलाया है, उसी प्रकार सभी जैनों को हर घर बोलता समयसार पहुँचाने का अभियान चलाना चाहिए।

कार्यक्रम में पधारे सभी साधर्मियों ने चिदायतन के निर्माण प्रगति का अवलोकन कर शीघ्र पूर्णता की कामना की और प्रतिकृति देखकर जिनालय की भव्यता को सराहा।

वात्सल्य पर्व सानन्द सम्पन्न

आत्मसाधना केन्द्र दिल्ली में रक्षाबन्धन पर्व बड़े ही उत्साहपूर्वक मनाया गया। प्रात: श्री जिनेन्द्र अभिषेक पूर्वक नित्य नियम पूजन के साथ ही श्री रक्षाबन्धन पर्व की पूजा की गयी। इस अवसर पर पण्डित जतीशचन्द शास्त्री ने रक्षाबन्धन पर्व की महिमा बतलायी।

आत्मार्थी कन्याओं ने रक्षाबन्धन पर्व पर मार्मिक गोष्ठी का आयोजन किया। रक्षाबन्धन पर्व से अनेक शिक्षाओं को ग्रहण करना चाहिए, ऐसा सम्बोधन कन्याओं ने साधर्मी सभा के सदस्यों को ज्ञात कराया। इस अवसर पर अनेक स्थानों से साधर्मी भाई-बहिन पधारे।

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की सदस्यता स्वीकार करता हूँ और मैं ..... राशि जमा करवाऊँगा / दूँगा।

हस्ताक्षर

- चौथाई ग्रास दान भी अनुकरणीय -

ग्रासस्तदर्धमपि देयमथार्धमेव,
तस्यापि सन्ततमणुव्रतिना यथर्द्धिः।
इच्छानुसाररूपमिह कस्य कदात्र लोके,
द्रव्यं भविष्यति सदुत्तमदानहेतुः॥

अर्थात् गृहस्थियों को अपने धन के अनुसार एक ग्रास अथवा आधा ग्रास अथवा चौथाई ग्रास अवश्य ही दान देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि हमें ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जब मैं लखपति या करोड़पति हो जाऊँगा, तब दान दूँगा; बल्कि जितना धन हमारे पास है, उसी के अनुसार थोड़ा-बहुत दान अवश्य देना चाहिए। - आचार्य पद्मनन्दि : पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका, श्लोक 230

यह राशि आप निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	:	SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	RAILWAY ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	:	1825000100065332
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0001000
PAN NO.	:	AABTA0995P

UPI
BHIM UPI Payments Accepted at
SHRI ADINATH KUND KUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST

Account Number : 1825000100065332, IFSC Code: PUNB0001000

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

तीर्थधाम मंगलायतन से प्रकाशित एवं उपलब्ध साहित्य सूची

मूल ग्रन्थ–

1. समयसार वचनिका
2. प्रवचनसार (हिन्दी, अंग्रेजी)
3. नियमसार
4. इष्टोपदेश
5. समाधितंत्र
6. छहढाला (हिन्दी, अंग्रेजी सचित्र)
7. मोक्षमार्ग प्रकाशक
8. समयसार कलश
9. अध्यात्म पंच संग्रह
10. परम अध्यात्म तरंगिणी
11. तत्त्वज्ञान तरंगिणी
12. हरिवंशपुराण वचनिका
13. सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन

1. प्रवचनरत्न चिन्तामणि
2. मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन
3. प्रवचन नवनीत
4. वृहद्द्रव्य संग्रह प्रवचन
5. आत्मसिद्धि पर प्रवचन
6. प्रवचनसुधा
7. समयसार नाटक पर प्रवचन
8. अष्टपाहुड़ प्रवचन
9. विषापहार प्रवचन
10. भक्तामर रहस्य
11. आतम के हित पंथ लाग!
12. स्वतंत्रता की घोषणा
13. पंचकल्याणक प्रवचन
14 मंगल महोत्सव प्रवचन
15. कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन
16. छहढ़ाला प्रवचन
17. पंचकल्याणक क्या, क्यों, कैसे?
18. देखो जी आदीश्वरस्वामी
19. भेदविज्ञानसार
20. दीपावली प्रवचन
21. समयसार सिद्धि
22. आध्यात्मिक सोपान
23. अमृत प्रवचन
24. स्वानुभूति दर्शन
25. साध्य सिद्धि का अचलित मार्ग
26. अहो भाव!

पण्डित कैलाशचन्द्रजी का साहित्य

1. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला (भाग 1 से 7) (हिन्दी गुजराती)
2. मंगल समर्पण

अन्य

1. फोटो फ्रेम (पूज्य गुरुदेवश्री, बहिनश्री)

2. सी.डी.

3. मंगल भक्ति सुमन
4. मंगल उपासना
5. करणानुयोग प्रवेशिका
6. धन्य मुनिदशा
7. धन्य मुनिराज हमारे हैं!
8. प्रवचनसार अनुशीलन

बाल साहित्य (कॉमिक्स)

1. कामदेव प्रद्युम्न
2. बलिदान

आद. पवनजी की स्मृति में उपरोक्त साहित्य सभी मन्दिरों, ट्रस्ट, संस्थानों, विद्यालयों, पुस्तकालयों और साधर्मी भाई–बहिनों को स्वाध्यायार्थ निःशुल्क दिया जायेगा। सम्पर्क – सम्पर्कसूत्र – पण्डित सुधीर शास्त्री, 9756633800

Email : info@mangalayatan.com

– डाकखर्च आपका रहेगा।

तीर्थधाम मङ्गलायतन की गतिविधियों की झलकियाँ

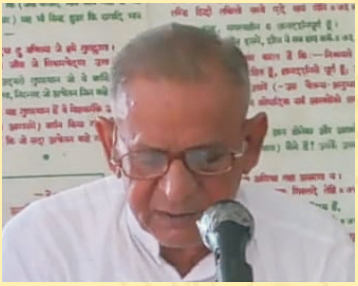

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

हम भी उस ही पन्थ के पथिक

अहो! धन्य यह मुनिदशा!! मुनिराज फरमाते हैं कि हम तो चिदानन्दस्वभाव में झूलनेवाले हैं; हम इस संसार के भोग हेतु अवतरित नहीं हुए हैं। अब हम अपने आत्मस्वभाव में प्रवृत्त होते हैं। अब हमारे स्वरूप में विशेष लीन होने का अवसर आया है। अन्तर आनन्दकन्दस्वभाव की श्रद्धासहित उसमें रमणता हेतु जागृत हुए हमारे भाव में अब भङ्ग नहीं पड़ना है। अनन्त तीर्थङ्करों ने जिस पन्थ में विचरण किया, हम भी उस ही पन्थ के पथिक हैं।

(-जिणसासणं सव्वं, 75, पृष्ठ 4)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com